P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-11*(Part-2) February 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

हिन्दी काव्य–ग्रन्थों की प्राणाधार प्रकृति एवं बदलता पर्यावरण

निधि शर्मा
प्रवक्ता,
हिन्दी विभाग,
किशोरी रमण महिला
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
मथुरा, उ.प्र., भारत

सारांश

''अनल, अनिल, जल, गगन, रसा है।
इन पॉचों से विश्व बसा है।।''

ब्रह्माण्ड की निर्मिती उक्त पॉचों तत्वों से मानी गई है और इन्हीं पंचभूत तत्वों से मानव शरीर की संरचना हुई है जिसके लिये गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि –

''क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा,
पंच रचित अति अधम शरीरा। ''

अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु से निर्मित यह पंच तत्वों का शरीर नाशवान् है और पॉच तत्वों से युक्त ब्रह्माण्ड को ही हम पर्यावरण कहते हैं। इस पर्यावरण में जल, थल, नभ, वायु, अग्नि और प्राणी सम्मिलित हैं। चराचर जगत से जिस सुन्दर प्रकृति का निर्माण होता है, वही हमारा पर्यावरण है।

मुख्य शब्द : हिन्दी काव्य–ग्रन्थ, प्रकृति, पर्यावरण।

प्रस्तावना

सृष्टि के आरम्भ से मानव प्रकृति की शुद्धि, सात्विक, ममतामयी गोद में आलौकिक आन्नद की अनुभूति करता रहा है। वास्तव में प्रकृति और मनुष्य का परस्पर मन–प्राणों का सम्बन्ध है। भोर का अन्धकार–मिश्रित उजाला एवं सूर्योदय का रमणीक पावन दृष्य किसके मन–प्राणों को उद्वेलित नहीं कर देता, एक स्वस्थ–सुन्दर चेतना और मधुर पावन आस्था नहीं भर देता। ऊषाकाल में पक्षियों का कलरव और सरसाती हुई शीतल मन्द–सुगन्ध बयार किसे चंचलता प्रदान नहीं करती। चाँद–सितारों से युक्त आकाश की नीलिमा, पूर्णिमा की सिन्दूरी चाँदनी किसके मन को मुग्ध नहीं कर देती। वर्षा के धूम–धुँआरे कजरारे बादल, चंचलता का सौन्दर्य विलास फुहारों की मादकता, कोयल का पंचम आलाप मयूरों का मनभावन नृत्य तथा मेघों की छाया में उड़ते बगुलों की पंक्ति, शरद ऋतु का निरभ्र आकाश बसंत–ऋतु का सौन्दर्य–प्रसार सभी तो मानव–मन को युगों–युगों से आन्दोलित व पुलकित करते रहे हैं

अध्यायन का उद्देश्य

भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से ही प्रकृति और पर्यावरण को विशेष महत्व दिया गया है। इतना ही नहीं वेदों में तो इसे ईश्वर के समान स्थान दिया गया है। परम्परागत जीवन पद्धति में यह व्यवस्था थी कि जितना हम प्रकृति से लेते थे, उससे कहीं अधिक अपने श्रम द्वारा देने की कोशिश की जाती थी। ऋषि–मुनियों द्वारा होम, यज्ञ आदि किये जाते थे, जिससे वातावरण के स्वच्छ होने के साथ वृक्षों के विकास और बढ़ोत्तरी के लिये भरपूर कार्बन–डाई–ऑक्साइड मिल सके। इस दृष्टि से समाज में हवन और यज्ञादि की परम्परा पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से एक अटूट परम्परा रही है, जिसे कभी ऋषि–मुनियों ने जन–कल्याण के लिये शुरू किया था तो कालान्तर में विभिन्न जातियों एवं धर्मों के लोक देवताओं ने इसके महत्व को बनाये रखने की कोशिश की थी। आजादी के बाद निर्मित हमारे संविधान में भी इसे प्रमुखता देते हुये पर्यावरण संरक्षण को नागरिकों का मूल कर्तव्य मानते हुये कहा गया– ''प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करें और उसका संवर्धन करें तथा प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखें।''

साहित्यावलोकन

यों तो धर्म, दर्शन, साहित्य और कला इन सभी में प्रकृति–चित्रण मिला है किन्तु काव्य में उसे सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। इसका मुख्य कारण यह है कि काव्य का रचयिता कवि होता है और कवि साधरण मानव की अपेक्षा अधिक संवेदनशील प्राणी होता है। अपनी इसी संवेदनशीलता के कारण वह प्रकृति के

विभिन्न दृश्यों में बहुत शीघ्र और बहुत अधिक अभिभूत होता है। आदि कवि वाल्मीकी ने जब प्रकृति के दो निर्द्वन्द प्राणियों को मुक्ति–विहार करते समय देखा तो उनकी आत्मा भाव–विह्वल हो उठी और जब दूसरे ही क्षण उन्होंने विहग–युगल में से एक को व्याध के बाण से आहत होकर तड़पते देखा तो उनकी आत्मा करुणा से विभोर होकर मुखर हो उठी। परिणामस्वरुप आदि कविता का जन्म हुआ –

''मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वामगमः शाश्वती समः।
यत्क्रौचयों मिथुनादेकमवधी नाम मोहितम्।।

वैदिक साहित्य ग्रन्थों में और परवर्ती पुराणों में देवासुर संग्राम की कथाऍं न तो दो जातियों में संघर्ष की ही गाथाऍं है, न ही मात्र प्रतीक हैं, अपितु संघर्ष की वे गाथाऍं भी प्रकृति के व्यापक सिद्धान्त की व्यवस्था करती हैं। असुर पर्यावरण के विरोधी होते थे। अतः सुरों द्वारा उनका विनाश किया जाना आवश्यक होता है। ऋग्वेद के मंत्रों में ऐसे निश्चित संकेत हैं कि जब प्रकृति चक्र असंतुलित होता था, तभी देवासुर संग्राम होते थे। सभ्यता की विकास–यात्रा में यह प्रक्रिया पुराण–काल तक रही है। पुराणों में ईश्वर के अवतारों के उद्देश्यों में यह भी निरूपित किया गया है कि प्रकृति चक्र को नियमित और संतुलित करने के लिये ही भगवान अवतार ग्रहण करते हैं। इस संदर्भ में श्रीकृष्णावतार के कुछ प्रसंग तो इतने जीवंत हैं कि वे समकालीन पर्यावरण की समस्याओं को भी रेखांकित करते हैं श्रीकृष्ण ने यमुना के जल में निवास करने वाले कालिया नाग का दमन इसलिये किया था, क्योंकि कालिया नाग ने यमुना के जल को अपने विष से दूषित कर दिया था। ताल–वन में श्रीकृष्ण ने गर्दभासुर का वध इसीलिये किया था, क्योंकि उस वन के फल–फूल सामान्य ग्वाल–बाल को प्राप्त नहीं होते थे। गर्दभासुर ने उक्त वन को अपने आधिपत्य में ले रखा था। सर्व–सामान्य को उस वन के फल–फूल उपलब्ध हो सकें इसलिये गर्दभासुर का वध आवश्यक था। श्रीकृष्ण के लीला–चरित्र में गोवर्द्धन पूजा भी पर्यावरण से ही संबंधित है। मिथ्या और अहंकारी देवताओं की पूजा की अपेक्षा उस पर्वत की पूजा अधिक वांछनीय है, जिससे मनुष्यों को आजीविका के साधन मिलते हैं, पशु–पक्षियों का पोषण होता है। इस तरह के और भी प्रसंग हो सकते हैं, जिनकी व्याख्या पर्यावरण की शुद्धि के रूप में ही की जा सकती है।

पंडित सत्यनारायण 'कविरत्न' जी ने भ्रमर–दूत में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को उठाया है। माता यशोदा कृष्ण को संदेश भेजती हुई पर्यावरण प्रदूषण पर प्रकाश डालती हुई कहती हैं कि हे कृष्ण अब तुम्हारे आभाव में न वह यमुना है न वह कालीदह है अपितु अब तो यमुना नदी का रेत और झाऊओं का वन ही इन स्थलों पर दृष्टिगत हो रहा है –

''पहली सी नहिं या यमुना हूँ में अब गहराई।
जल को थल, अरु थल को जल अब परत लखाई।।
कालीदह कौ ठौर जहै, चमकत उज्जवल रेत।
काछी, माली करत तहँ अपने–अपने खेत ।।
घिरे झाऊनी सों।।''

काव्य और प्रकृति का सम्बन्ध अभिन्न है। काव्य इस विविध रुपात्मक जगत की अभिव्यक्ति है। यही प्रकृति और काव्य के सम्बन्धों का आधार है। जब प्रकृति रुपों को भावों में ग्रहण करता है, प्रकृति अनुप्रणित हो उठती है और उसकी अभिव्यक्ति में वह मानवीय आकार में भी कभी–कभी उपस्थित होती है। काव्य का आविर्भाव ही प्रकृति का सम्बल पाकर हुआ है। चूकिं काव्य मानवीय अभिव्यक्ति है इसलिये प्रकृति और काव्य के सम्बन्धों की विवेचना में मानव बीच की कड़ी है।

मनुष्य चिरकाल से प्रकृति के प्रति अपने लगाव को प्रदर्शित करता आया है। उसके प्रकृति और सौन्दर्य–प्रेमी मन को सदैव वन–सम्पदा, प्राकृतिक छटा, कल–कल करते झरने, पर्वत, पेड़ पर चहकते पक्षी, हरियाली, घास पर चौकड़ी भरते मृगशावक आकर्षित व प्रभावित करते हैं। मनुष्य का प्रकृति के प्रति उदात्त होना नया नहीं है। जब से मानव कल्पना लोक और प्राकृतिक सौन्दर्य में डूबने–उतरने लगा, उसने अपने को प्रकृति का सहचर बनाकर जीवन और प्रकृति में समरसता लाने का प्रयास किया। इसी प्रयास में भ्रमणशील कवि मन ने वन सौन्दर्य को अपनी लेखनी की चमक से साहित्य–क्षेत्र में उकेरा हैं रामकथा के विश्व कवि संत शिरोमणि, गोस्वामी तुलसीदास ने ''रामचरित मानस'' में चित्रकूट, पंचवटी अरण्य एवं किष्किन्धा वर्णन में पर्यावरण का स्थान–स्थान पर रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है।

उदाहरणार्थ–

''फूलहिं फलहिं बिटप विधि नाना।
मंजु बलित बट बेलि बिताना,
सुरतरु सरिस सुभाय सुहाय।
मनहु विविध वन परिहरि आये।।
बिटप बेलि वृण अगनित जाती।
फल प्रसून पल्लव बहु भाती,
सुन्दर सिला सुखद तरु छाही।
जादू बरनि बन छबि केहि पाही।।''

रामायण तथा महाभारत के उपरान्त संस्कृत में जो–जो ग्रन्थ लिखे गये उन सभी में प्रकृति–वर्णन की भरमार है वरन् परवर्ती महाकाव्यों में तो प्रकृति–चित्रण को महाकाव्य का अपरिहार्य–तत्त्व स्वीकार कर लिया गया है। कालिदास ने 'मेघदूत' की भव्य झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं । गंभीर नदी को उन्होंने मदविह्वल नारी के रुप में प्रस्तुत करते हुये उस पर नायिका के हाव–भावों का आरोप किया है। कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश में भी प्रकृति के सुन्दर चित्र। शिशुपाल वध किरातार्जुनीय आदि महाकाव्यों में भी प्रकृति–वर्णन को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। मृच्छकटिक, अभिज्ञानशाकुन्तल विक्रमोर्वशीय, उत्तर रामचरित आदि संस्कृत के नाटक भी प्रकृति–वर्णन से भरे पड़े हैं। दशकुमारचरित, कादम्बरी, हर्षचरित आदि गद्यकाव्यों में तो प्रकृति–चित्रण को शीर्षस्थ स्थान ही मिला है। इनके रचयिताओं की तूलियों प्रकृति के बड़े ही मनमुग्धकारी चित्र अंकित किये हैं।

प्रकृति –चित्रण हमें भक्तिकालीन भक्त कवियों की रचनाओं में दिखाई देता है। यद्यपि सन्त कवियों का उद्देश्य प्रकृति का चित्रण करना कभी नहीं रहा तथापि उन्होंने अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति के लिये

विभिन्न रुपों को अपनाया है। आध्यात्मिक प्रेम की साधना, उल्लास, तत्मयता और एकनिष्ठता का उल्लेख सन्त कवियों ने प्रकृति के व्यापक क्षेत्र से चुने हुए रुपकों के माध्यम से किया है। इस प्रकार पद्यों में प्रकृति के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है–

''मानसरोवर सुभग जल,
हंसा केलि कराहिं।
मुक्ताहल मुक्ताचुयगै,
अब उड़ि अनत न जाहि।।''

साधनाजन्य अपुभूति को अभिव्यक्ति देने के लिये भी कबीर प्रकृति की ही शरण में जाते हैं –

''अंतर कंवल प्रकासिया, ब्रह्य बास तहँ होय।
मन भँवरा तहँ लुबुधिया, जागैगा जन कोय।।''

सूर–काव्य में प्रकृति–चित्रण अद्वितीय है –

''बिनु गोपाल बैरिन भईं कुंजैं,
तब ये लता लगत अति शीतल,
अब भई विषम ज्वाल की पुंजै।''

रीतिकालीन काव्य में घोर श्रंगारिता एवं वैभव–विलास के रंगीन चित्र होते हुये भी उसमें सुन्दर प्रकृति–चित्रण हुआ हैं। बिहारी के काव्य में प्रकृति–सौन्दर्य दर्शनीय है –

''लगत सुभग सीतल किरन,
निसि सुख दिन अवगाहि।
महा ससी भ्रम सर त्यौं,
रहति चकोरी चाहि।।''

कवि देव का प्रकृति–चित्रण का सुन्दर रुप भी देखने को मिलता हैं अनुप्रास में लिखित एक पद दर्शनीय है –

''या चकवि को भयो चित चीतो,
चितोती चहुँ दिसि चाव सो नाची।
हैव गई छीन छपाकर की छवि,
जामिनी जौन जो जनु जाँची।।
बोलत बैरी बिहंगम देव,
सुबैरिन के घर सम्पत्ति साँची।
लोह पियो सुवियोगिनी को,
सुकियो मुख लाल पिसाचिनी प्राची।।''

आधुनिक युगीन हिन्दी काव्य में प्रकृति का चित्रण अत्यन्त व्यापक स्तर पर हुआ है। छायावादी काव्य में तो सर्वत्र प्रकृति की ही छटा देखने को मिलेगी। आधुनिक काल में कवियों की रचनाओं में प्रकृति–चित्रण में एक कालगत विकास भी दिखाई पड़ता है। अयोध्या सिहं उपाध्याय 'हरिऔध' का प्रकृति सम्बन्धी काव्य इस दिशा में अत्याधिक सुन्दर है। यथा –

''दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।।
तरु शिखा पर थी अब राजती।
कमालिनी कुल वल्लभ की प्रभा।।''

'हरिऔध' जी के 'प्रियवास' में विरह विधुरा गोपियाँ अपनी हृदय व्यथा प्रकृति में प्रतिबिम्बित देखती है–

''विकलता उसकी अवलोक के।
रजनी भी करती अनुताप थी।।
निपट नीरव जही मिस ओस के।
नयन से गिरता बहु वारि था।।
विपुल नीर बहाकर नेत्र से।
मिस कलिन्द–कुमारि–प्रवाह के।।
परम कातर हो रहे मौन ही।
रुदन थी करती ब्रज की धरा।।''

हरिऔध ने 'प्रियप्रवास' में प्रकृति के विविध रुपों की झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। 'प्रियप्रवास' में नवम सर्ग के अन्तर्गत कवि ने गोवर्धन पर्वत की आलौकिक शोभा का वर्णन करते हुए उसे एक स्वाभिमानपूर्ण गिरिराज के रुप में अंकित किया है जो अपनी सर्वोच्चता के कारण ब्रज की शोभामयी भूमी का सुन्दर मानदण्ड बनाकर ऊँचा सिर करके खड़ा दिखाई देता है –

''ऊँचा शीश सहर्ष शैल करके था देखता था व्योम को।
या होता अति ही स–गर्व वह था सर्वोच्चता दर्प से।
या वार्ता यह था प्रसिद्ध करता सामोद संसार में।
मैं हूँ सुन्दर मानदण्ड ब्रज की शोभामयी भूमिका।

कविवर पंत जी और निराला जी का मन भी प्राकृतिक–सौन्दर्य पर मोहित हुए बिना न रह सका। प्राकृतिक सम्पदा के नाना रंगों से ऋतु का श्रृंगार करते हुए कविवर पन्त जी लिखते हैं–

''कानों में गुड़हल
खोंस धवंल,
या कुई, कनेर, लोध पाटल,
वह हरसिंगार से कच संवार,
मृदु मोलसिरी के गूँथ हार,
गऊओं संग करती वन विहार,
वह वुंद कांस से अमलतास से,
आम्र बौर सहजन पलाश से,
निर्जन में सज ऋतु सिंगार।।''

कविवर पंत की रचनाओं में प्रकृति–प्रेम सर्वोपरि दिखाई देता है। कवि प्राकृतिक सुषमा की ओर इतना आकृष्ट है कि उसे सर्वत्र चिर–यौवना प्रकृति का सचेतन सौन्दर्य बिखरा हुआ दिखाई देता है और उस प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति कवि की तन्मयता, मोहकता एवं संवेदनशीलता उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होती जाती है। प्रकृति में सचेतन व्यापारों की झाँकी प्राप्त करके इस नित्य नूतन सौन्दर्य से ओत–प्रोत प्रकृति–सुन्दरी की शाश्वत सुषमा पर इतना अधिक विमुग्ध बाला के मानवीय सौन्दर्य में कोई आकर्षण ज्ञात नहीं होता। यथा –

''छोड़ द्रुमों की मृदु छाया तोड़ प्रकृति से भी नाता,
बालें तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन
भूल अभी से इस जग को ?

कविवर पंत जी कहते है कि –

''निराकार तुम मानो सहसा,
ज्योति–पुंज में हो साकार।
बदल गया द्रुत जगत–जाल में,
धर कर नाम रुप नाना।।''

प्रसाद जी ने 'आँसू' में जीवन की तुलना पावन ऋतु से की है –

''मेरा पावस ऋतु–सा जीवन
मानस–सा उमड़ा अपार मन।
गहरे, धुँधले, घुले साँवले
मेघों से मेरे भरे नयन।।''

एक अन्य स्थान पर प्रसाद जी लिखते हैं –

''वह चन्द्रहीन था एक रात
जिसमें सोया था स्वच्छ प्रात
उज्जवल–उज्जवल तारक झिलमिल
प्रतिबिम्बित सरिता वक्षस्थल।''

प्रकृति के सुन्दर रुप में मानसिक आनंद प्रदान करने की विलक्षण क्षमता होती है। उसकी विराटता, भव्यता अद्भुत रस का संचार करती है, नयी–नयी कल्पनाएँ करके मानव मन झूमने लगता है।

''प्रतिक्षण नूतन वेष बनाकर रंग–बिरंगा निराला।
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिद माला।।
नीचे नील समुन्द्र मनोहर ऊपर नीलगगन है।
घन पर बैठ बीच में विचरुँ यही चाहता मन है।।''

मानव–जीवन के निर्माण में प्रकृति के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। वह कल्याणकारिणी है, विभवशालिनी है। अपने दुख में प्रकृति दुखी है और अपने सुख में प्रकृति सुखी दिखाई देती है। बालुका राशि पर पड़ी हुई स्वच्छ गंगा पर्यंक पर लेटी हुई किसी श्वेतवसना अप्सरा से कम नहीं होती। शान्त, कान्त, निश्चल और शरद की चांदनी –

''नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद–हासिनी।
मृदु करतल पर शशि–मुखधर
नीरव अनिमिष एकाकिनी।''

प्रकृति के उपहार अनमोल हैं। मनुष्य उनका कुछ भी मूल्य नहीं चुका सकता। अपरिमित आनन्द के इन स्रोतों का मूल्य चुकाने की क्षमता है भी किसमें ? फूलों का हास; मधुऋतु का अतुल वैभव, वर्षा के जल स्रोत सब अमूल्य हैं, कोयल के मीठे बोलों का मूल्य कौन चुका सकता है, शरद की चाँदनी का मोल कौन दे सकता है?–

''विरल जलद–पर खोल अजान,
छाई शरद रजत मुस्कान।
यह छवि की ज्योत्सना अनमोल ?
लोगी मोल, लोगी मोल ?

पन्त के समकालीन और छायावाद के तीसरे ठोस स्तम्भ के रूप में प्रसिद्ध महाप्राण निराला ने 'अपरा' के माध्यम से प्राकृतिक सौन्दर्य को गॉवों की वनस्पति और पहाड़ों की धरती पर उगे बड़े–बड़े वृक्ष, जलाशयों के इर्द–गिर्द खड़े ताड़ व नारियल के रूप में वर्णित किया है–

''जलाशय के किनारे कुहरा था,
हरे–नीले पत्तों का घेरा था,
पानी पर आम की डाल आयी हुई
वन का परिमल लिये मलय बहा,
नारियल के पेड़ हिले क्रम से,
ताड़ खड़े ताक रहे थे सबको ।''

कवि निराला ने वर्षा और शरद में उत्फुल्ल प्राकृतिक दृश्यों को खेतों, खलिहानों और आम्र कुँजों के बीच इस प्रकार देखा और उनकी कलम चल पड़ी।

''पल्लव से शाखा, शाखा से द्रुम, द्रुम से
नव पुष्प और फल। हँसते बढ़ें धान खेतों में,
जल पर हरे रेत जैसे।''

निराला जी का प्रकृति–चित्रण अपने आप में निराला ही है –

''व्योममंडल में–जगती तल में,
सोती शान्त सरोवर पर उस असल कमालिनी दल में।
सौन्दर्य गर्विता सरिता के अतिविस्तृत वक्ष स्थल में,
धीर–वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि अटल–अचल में।
उत्ताल तरंगाघात् प्रलय–घन–गर्जन–जलध–प्रलय में।
क्षिति में–जल में–नभ में–अनिल–अनल में
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा–''चुप चुप चुप''
है गूँज रहा सब कहीं।।''

जगत के बनते–बिगड़ते रूपों की मौसम के अनुरूप व्याख्या करने में कवि कभी पीछे नहीं रहा। वर्षा, शरद, शीत एवं ग्रीष्म की ऋतुओं में उत्पन्न धरती की क्रोड़ के अनमोल वृक्ष, लता, कन्द–मूल, फल और फसलें सभी को देख–देख कवि का मन कभी किसान के साथ, कभी श्रमिक के साथ और कभी प्रकृति व समय के साथ होकर अपनी रचनाधर्मिता का निर्वाह करता है। प्रकृति की गुरुता को साहित्य में कवियों ने जितने आलम्बन, उद्दीपन, उपमा और उपमान प्रदान किये वहीं पेट और व्यापार से जुड़े लोगों ने धरती के हरियाली वनों से उन्हें अलग किया।

युग परिवर्तन के साथ मानव मूल्य बदले, उसकी आवश्यकताएँ बदली और जीवन के सारे समीकरण, परिणाम यह हुआ कि मनुष्य ने जंगल की वनस्पतियों का दोहन प्रारम्भ कर दिया, परिणामस्वरूप कवियों को वह दृश्य परिलक्षित नहीं हुआ जिसका वर्णन तुलसी, पंत, निराला या प्रसाद ने किया था।

जब फिर प्रकृति और पुरूष के बीच के बढ़ते अन्तर को देख कवि का मन कह उठा–

''ठीक–ठीक सध जाये,
वृक्ष और मैदान,
नीड़ और आकाश,
का समीकरण ।''

प्रकृति और मानव जीवन को साधने के बीच कवि यह महसूस करता है कि–

''इतने चुप और,
शान्त हैं पेड़, हवा में,
लगता है ये तस्वीरें हैं,
वृक्षों की, कुछ थोड़े अलग ठंडा की।''

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि जन–जीवन का कोलाहल और जंगल की चुप्पी यह प्रकट करती है कि पेड़ व्यक्तियों के आक्रान्त व्यवहार से क्षुब्ध हैं। पर्यावरण और प्रकृति का वर्तमान स्वरूप यही दर्शाता है कि हम अपने प्राचीन ग्रन्थों और लोक देवताओं के मर्म को भूल से गये हैं। आज हमारी मानसिकता और सोच यह बन गयी हैं कि जितना अधिक से अधिक हो सके प्रकृति का दोहन

कर लें। अपने किंचित् स्वार्थों के कारण इंसान ने पर्यावरण को असंतुलित कर दिया है। धरती माता पर हरियाली सिकुड़ने लगी है। पहाड़ों को खोदकर खोखला कर दिया है, जिससे वहॉ पर वीरानी छा गई है। हवा और पानी जैसी मूलभूत आवश्यकताएॅ दिनोंदिन बढ़ते प्रदूषण से विषैले हो गये हैं। भोगोन्मत्त मानव जाति आज विवेक–शक्ति से वंचित हो गई है और क्रूरतापूर्वक प्रकृति का हनन कर रही है। मनुष्य भौतिक आनंद के भाव में ही इतना विक्षिप्त–सा हो उठा है कि उसे आत्मा के परिक्षेत्रों का कोई ज्ञान नहीं हो पा रहा है। विलासिता का यह दौर वस्तुतः आत्म–हनन का दौर है। भारतीय मनीषा ने प्रकृति को जिस आध्यात्मिक दृष्टि से देखने की प्रक्रिया अपनायी थी वह आज धूमिल हो गई है। प्रकृति ने हमें ऐसा संसार रचकर दिया कि जल छलकाती नदियॉ बहती थीं, जंगल फलों–फूलों से लदे रहते थे। हर कोई भर पेट खाता था। पर हमने सारा पर्यावरण ध्वस्त कर दिया। प्रदूषण से बचाव का एकमात्र तरीका है सम्पूर्ण रूप से पर्यावरण–संरक्षण। यह तभी संभव है, जब मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को लोभ के घेर से बाहर निकालकर संयम के दायरे में दाखिल हो। अब समय आ गया है कि जब हमें अपने हित की नई संस्कृति विकसित करनी होगी। ऐसी संस्कृति जिसका आधार पर्यावरण सुधार होगा न कि पर्यावरण में जहर घोलना–

''उठो !
उठो! मेरे साथियों, उठो।
इस दूर तक फैली जमीन को,
हरा करने का उपक्रम करें।
+ + + + + + +
दिशाओं में फैले साधनों का
सामंजस्य करना है,
सबके लिये।

प्रकृति और जीवन में सामंजस्य बनाकर ही हम पर्यावरण को सुरक्षित रख सकते हैं। वन्य–जीवन और प्राकृतिक सम्पदा को बचाना ही मानव–जीवन का संरक्षण होगा अन्यथा विनाश हमारे सामने मुॅह फैलाये खड़ा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि– डा0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना पृष्ठ सं. 13,14,273,247

पर्यावरण संरक्षण एवं सामाजिक दायित्व – मानचंद खंडेला पृष्ठ सं. 1,2,3,4

प्रदूषण नियंत्रण और पर्यावरण सजगता – गोपीनाथ कालभोर पृष्ठ सं. 111,112,113,129, 130,131,132,138, 139

पर्यावरण प्रदूषण, कुछ सुझाव– वीर कुमार अधीर, पृष्ठ सं. 61

निराला काव्य में प्रकृति, रेणुबाला पृष्ठ सं. 26,29,39

हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – डा0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना पृष्ठ सं. 380